International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 06-10-2020; Accepted: 21-10-2020; Published: 13-11-2020
www.socialsciencejournal.in
Volume 6; Issue 6; 2020; Page No. 54-55

समकालीन भारतीय दर्शन में गाँधीवाद और अहिंसा का संगठन

डॉ. बिपिन बिहारी मधुकर
एम. ए. (दर्शनशास्त्र) पी.–एच. डी. बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर आवासः ग्राम–मानपुरा, जिला–वैशाली, बिहार भारत

शोध–सार
प्रस्तुत शोध–पत्र 'समकालीन भारतीय दर्शन में गाँधीवाद और अहिंसा का संगठन' पर आधारित है। गाँधी जी का 'वाद' वस्तुतः वाणी का व्यवहार है। यह संस्कृत के 'वद्' धातु से बनता है।1 'वाद' से हम किसी सामान्य क्रिया, विशेष–व्यवहार व सिद्धांत को समझते हैं।2 विचार जब किसी व्यक्ति की मर्यादा में कैद हो जाता है, तो वह 'वाद' बन जाता है और विचार जब धार्मिक आग्रह या मतविशेष पर आरूढ़ हो जाता है, तो वह 'सम्प्रदाय' बन जाता है। अंध आग्रह वाद का मूल है एवं हठ मानो इनका प्राण। वादों का जन्म अक्सर उन लोगों की प्रेरणा से नहीं होता, जिनके नाम पर वे स्थापित होते हैं, बल्कि मूल विचारों पर अनुयायियों द्वारा लादी जानेवाली मर्यादाओं के फलस्वरूप वे अस्तित्व में आते हैं। रचनात्मक प्रतिमा के अभाव में अनुयायी प्रणालियाँ व संगठन बनाते हैं और ऐसा करने के समय वे मूल सिद्धान्तों को कठोर, स्थिर, एक पक्षीय और कट्टर बना देते हैं जिससे उनकी मौलिक ताजगी और धारावाहिकता नष्ट हो जाती है, जो कि जीवन की निशानी है।3

शब्द कुंजी: गाँधीवाद, सत्य के प्रयोग, सत्याग्रह दर्शन, अहिंसा का संगठन, मानव प्रेम।

भूमिका

गाँधी जी ने 'वाद' पर विश्वास नहीं रखा और स्पष्ट रूप से कहा ''गाँधीवाद नाम की कोई वस्तु नहीं है और न मैं अपने पीछे कोई समुदाय छोड़ जाना चाहता हूँ।''4 उनका जीवन ही उनका संदेश और उनके विचार की खुली पुस्तक थी। उनकी भाषा कार्य की भाषा थी, वाद के विवाद में उन्हें कोई रस नहीं था। इसलिए 'सत्य के प्रयोग' ही उनकी आत्मकथा एवं 'अहिंसा का कर्मयोग' ही उनका जीवनचरित बन गया। तात्पर्य यह कि विचार, वाणी एवं व्यवहार में एकता ही उनका जीवन–दर्शन था।5 इसीलिए उन्होंने कभी यह दावा नहीं किया कि उन्होंने किसी नए तत्व या सिद्धान्त का आविष्करण किया। वे हमेशा जीवन के शाश्वत सत्यों को व्यावहारिक जीवन के प्रश्नों पर अपने तरीके से उतारने का प्रयास करते रहे। यह ठीक है कि कराँची कांग्रेस के समय अपने कार्यक्रम की आलोचना करने वालों को उत्तर देते हुए उन्होंने बलपूर्वक घोषणा की थी, ''गाँधी मर सकता है, लेकिन गाँधीवाद अमर रहेगा।6 किन्तु यह तो महामानव का आत्मविश्वास मुखरित हो रहा था। यह किसी वाद की प्रतिष्ठा का उपक्रम नहीं था।

उनका यह मानना था कि अगर 'वाद' के अर्थ में एक निश्चित ढाँचे में तैयार किया हुआ जीवन–दर्शन का पूर्ण नक्शा (ब्वउचसमजम चेपसवेवचील वि स्पमि) हो, या एक पूर्ण शास्त्र जिसे देखकर जीवन सम्बन्धी किसी मामले का जवाब हासिल कर लिया जाए, तो इन अर्थों में गाँधीवाद जैसी कोई चीज नहीं है। लेकिन, यदि 'वाद' का अर्थ जीवन–व्यवहार के लिए कुछ मोटे नैतिक सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण हो, तो मानना होगा कि गाँधीवाद नाम का भी एक और व्यवहार–मार्ग उत्पन्न हो चुका है। इसीलिए 'गाँधीवाद' कहने की अपेक्षा मशरूवाला ने 'सर्वोदयवाद' और 'सत्याग्रह–दर्शन'7 काका कालेलकर ने 'सर्वोदयकारी समाज, व्यवस्था'8 आचार्य कृपलानी जी ने 'गाँधी–दृष्टिकोण' या 'गाँधी मार्ग'9 कहना ज्यादा पसन्द किया है। यह दिगर बात है कि गाँधी द्वारा इतने स्पष्ट विरोध के बाद भी गाँधी जी के श्रद्धाशील भक्तों ने ''उनके विचारों को गाँधीवाद नाम दे ही दिया है। अंग्रेजी में गाँधीवाद के लिए गाँधी शब्द कुछ अधिक व्यापक है, जिसे हम 'सिद्धान्त' के साथ–साथ 'विशेष व्यवहार' के अर्थ में भी प्रयुक्त कर सकते हैं। किन्तु हिन्दी में 'गाँधीत्व' एवं 'गाँधी–धर्म' शब्द अभी प्रचलित नहीं हो सका है। गाँधी ने गाँधीवाद के नाम से किसी तत्वज्ञान का प्रचार नहीं किया और न अपने वचनों को बाबा वाक्यं प्रमाणम् की तरह मानने को कहा। अपनी 'आत्मकथा' की प्रस्तावना में उन्होंने यहाँ तक स्पष्ट किया है ''मेरी विनय है कि मेरे लेखों को प्रमाणभूत न मानें।'' उन्होंने केवल उनमें प्रदर्शित प्रयोगों को उदाहरण–रूप मानकर उन्हें यथा शक्ति यथामति करने का आग्रह किया। इसलिए उन्होंने कभी किसी नए तत्व या सिद्धान्त का आविष्कार नहीं किया और बराबर यही कहा कि जो राय उन्होंने कायम की है, जिन निर्णयों पर पहुँचे हैं, वे भी अंतिम नहीं है। हो सकता है कल उन्हें बदल दूँ।10

गाँधीजी का विचार कोई जड़, स्थिर एवं गतिहीन विचार नहीं, वह एक प्रवहमान तथा प्रगतिशील जीवन–दृष्टि तथा आचार–धर्म है। उनका जीवन सत्य और अहिंसा का प्रयोग था।11 वह कोई वाणी का विषय या बुद्धि का विलास नहीं, यह तो अभ्यास एवं व्यवहार का विषय है।

गाँधी जी के दो प्रमुख मार्ग–सत्य के प्रयोग एवं अहिंसा का संगठन है।

1. **सत्य के प्रयोगः** गाँधी जी का जीवन ''सत्य के प्रयोग'' में ही बीता। उन्होंने सत्य का कोई सिद्धान्त या नवीन दर्शन प्रस्तुत नहीं किया। वह तो मानवता का चिरंतन, शाश्वत और सनातन मूल्य है। सत्य सत्य है, उसका दर्शन क्या होगा? सत्य वह है जिसकी सत्ता हो, जिसका जैसा धर्म, न्याय और योग्य प्रतीत होता है, वह 'सत्य' एवं उसका अविश्रान्त अन्वेषण एवं तदनुसार आचरण ही सत्याग्र है, जो सत्य के साक्षात्कार का साधन–मार्ग है। यानी सत्य गाँधी जी के लिए कोई सिद्धान्त नहीं, बलिक जीवन–सर्वस्व ही था। सत्य विचार, सत्य वाणी और सत्य–कर्म – ये तीनों ही एक ही तत्व के तीन पहलू हैं। विचार से जो सत्य जान पड़े, उसी के सविवेक आचरण को सत्कर्म एवं उसी का नम्रतापूर्वक कथन 'सत्यवाणी' कहा जाता है।12 सत्यवाणी तथ्य की वाणी है, सत्कर्म सत्य विचार है, आचरण है। सत्य के सम्बन्ध में तथ्य, वास्तविकता एवं व्यवहार के लिए यह निष्ठा व्यर्थ के दार्शनिक वाद–विवाद को समाप्त करता है। कर्महीन विचार बुद्धि–विलास है एवं सत्यविहीन वाणी शब्दों का अपव्यय एवं निरर्थक प्रपंच है। इसीलिए गाँधी जी ने

सत्य के ऊपर 'प्रवचन' नहीं किए, सत्य का प्रयोग किया। सत्य का सिद्धान्त नहीं दिया, सत्य की साधना की।

सत्य के प्रयोग में गाँधी की सबसे बड़ी देन यह रही है कि उन्होंने सत्याचरण को केवल वैयक्तिक जीवन का श्रृंगार नहीं, अपितु इसको सामाजिक–राजनीतिक जीवन का भी अविभाज्य अंग माना। इसीलिए तो वे राजनीति के अध्यात्मीकरण की दिशा में गोखले के स्वप्न को बहुत हद तक साकार कर सके। उनका 'सत्याग्रह' किसी व्यक्ति विशेष का सत्य के लिए सात्विक आग्रह नहीं, वह सामाजिक जीवन के सत्य की अनुभूति का मार्ग है, जिसके लिए उनके अनुसार उत्कृष्ट नैतिक जीवन आवश्यक है। इसीलिए गांधी का विचार वस्तुतः केवल विचार नहीं, आचार भी था या यों कहिए कि विचार और आचार एक सम्मिलित रूप था। उनकी वाणी अलंकरणशून्य थी, उनके विचार प्रयोगभूत जीवन की अनुभूति थे। इसीलिए, उनमें विवेकानन्द का विराट् ज्ञानकौशल, श्री अरविन्द का अद्‌भुत पांडित्य, कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य की प्रखर दार्शनिकता, रवीन्द्र की काव्यात्मकता एवं राधाकृष्ण की अकृत्रिमता एवं बुद्ध की करुणा के साथ–साथ कृष्ण की कर्मठता थी। इसीलिए उनका वेदान्त भी असाम्प्रदायिक था। उनका हिन्दुत्व विश्वधर्म एवं उनकी भारतीयता विश्वनागरिकता की भूमिका थी।

2. **अहिंसा का संगठन** : सत्य की वास्तविक साधना अहिंसा के बिना असंभव है; क्योंकि यदि सत्य साध्य है, तो अहिंसा साधन। मनुष्य का ज्ञात सत्य सदा ही आंशिक, एकान्तिक और आपेक्षिक होता है; क्योंकि सबों के दृष्टिकोण भिन्न–भिन्न होते हैं कोई मनुष्य इस बात का दावा नहीं कर सकता कि उसकी ही बात निरपेक्ष रूप से सत्य है। इसलिए सत्यान्वेषण में अनेकान्तिक दृष्टि जिसे गांधीजी ने अहिंसा कहा है, आवश्यक है। इसीलिए, 'सत्य के मनन और खोज में ही अहिंसा रत्न का अनुसंधान हुआ था।'' सत्य सर्वोच्च नियम है, अहिंसा सर्वोच्च कर्त्तव्य है।13 हिंसा की जड़, क्रोध, स्वार्थ, द्वेष आदि में है, इसलिए राग–द्वेष मुक्त सत्य की साधना हिंसा से नहीं, बल्कि अहिंसा से ही हो सकती है। सत्य की खोज का अर्थ है–सत्य के प्रति प्रेम, अर्थात् सबके लिए कष्ट–सहन के द्वारा मानवीय एकता की अनुभूति, इसीलिए रिचार्ड ग्रेग ने अहिंसा को 'सब प्राणियों के आध्यात्मिक जनतंत्र' के महान सत्य का व्यावहारिक प्रयोग माना है।14 इसलिए हिंसा मानव के सर्वश्रेष्ठ सत्य–प्रेम या सभी भूतों की एकता और पवित्रता के विरुद्ध अपराध है। इसीलिए अहिंसा सबसे बड़ा धर्म तथा सबसे बड़ी ईश्वरीय शक्ति और ईश्वरीय राज्य है।15 अहिंसा के समीप सारे वैर–द्वेष शांत हो जाते हैं–''यह योगसूत्र का प्रलाप नहीं, बल्कि ऋषियों की वास्तविक अनुभूति है। ज्ञातव्य अज्ञात सभी प्राणियों ने एक दूसरे के लिए कष्ट–सहन का धर्म और परस्पर प्रेम का व्यवहार सीखा और उसके आचरण से संसार को प्रतिष्ठित रखा। तथापि इस अहिंसा–शक्ति का सम्पूर्ण विकास एवं जीवन के व्यवहारों और सब कार्यों में इसके प्रयोग के मार्ग का पूर्णरूपेण शोधन एवं संगठन नहीं किया गया। हिंसा के मार्गों के शोधन और संगठन करने का मनुष्य ने जितना दीर्घ उद्योग किया है और उसे बहुत अंशों में वैज्ञानिक रूप देने में सफलता पायी है, यदि उतना उद्योग अहिंसा की शान्ति के शोधन और संगठन के लिए किया जाए, तो मनुष्य जाति के दुःखों के निवारणार्थ यह एक अनमोल, अचूक और अन्ततः उभयपक्ष का कल्याण करने वाला साधन सिद्ध होगा।16

'अहिंसा का संगठन' ही गांधी जी की सबसे बड़ी देन एवं युग की सबसे बड़ी घटना थी। उन्होंने अहिंसा का दर्शन नहीं दिया, उसकी तकनीक दी। उसका तत्वज्ञान नहीं, उसका प्राविधिक रूप बताया। अहिंसा की विशाल परम्परा और प्रेरक शक्तियां भारत में ही नहीं, बल्कि समस्त विश्व में आदिकाल से हो रही है। अब तो यह तीन हजार वर्ष पुरानी हो गई। यही बुद्ध की 'करुणा', अशोक की 'दया द्वारा विजय', महाबीर की 'अनेकान्तमूलक अहिंसा', यीसू के 'स्वर्ण–नियम' एवं टाल्स्टाय का 'मानव–प्रेम' है। लेकिन, गांधी ने अहिंसा को केवल भूतदया एवं परोपकार का सौम्यतम व्यक्त सद्‌गुण ही नहीं माना, इसको सामाजिक धर्म भी बनाया। यही नहीं, अहिंसा का सामुदायिक संगठन कर उसे सत्याग्रह के नाम से प्रयोग में लाया।

निष्कर्ष

गांधी ने तो स्पष्ट कहा कि वे अहिंसा का संगठन करने के लिए आए हैं और वास्तव में संगठन ही अहिंसा की वास्तविक कसौटी है। बुद्ध और महावीर, ईसा एवं अफलातुँ की अहिंसा का यदि सामुदायिक रूप से संगठन नहीं हो सकता, तो वह निष्फल है। अहिंसा ''केवल व्यक्तिगत गुण नहीं, वह व्यक्ति और समाज दोनों के लिए आध्यात्मिक और राजनैतिक व्यवहार मांग है।'' यह ठीक है कि पूर्ण अहिंसा को संगठित करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि गांधीजी को शुद्ध आत्मा की असीम और अनन्त शक्ति में अखंड आस्था थी। फिर भी समाजधर्म एवं प्रजातंत्र की यह माँग है कि अन्याय के प्रतिकार का आरम्भ ऐसा हो, जो समाज का साधारण–से–साधरण व्यक्ति भी व्यवहार कर सके। सत्याग्रही तो सुकरात भी थे और प्रह्लाद भी। गांधी ने सारे समाज को सुकरात बनाने का विज्ञान बनाया, सारा भारत प्रह्लाद बन गया। आणविक युग में अहिंसा के सूक्ष्मातिसूक्ष्म वैज्ञानिक संगठन के अतिरिक्त सत्ता की नृशंसता एवं शक्तिशाली हिंसा का विकल्प भी क्या होता?

संदर्भ

1. वद्–बोलना या कथन, कथक और कथ्य, वादवादी और वाद्य
2. श्रण ।ण भ्ण डनततल रू । छमू म्दहसपी क्पबजपवदंतल ;म्कण्द्ध व्गवितकए 1901ए भाग–11
3. आचार्य कृपलानी, 'गाँधी–मार्ग', पृ.–50
4. गाँधी जी, 'हरिजन'। 1.5.1937; 2–5–1940
5. पूर्वोक्त, 24.9.38
6. पट्टाभिसीतारमैया, काँग्रेस का इतिहास, पृ.–460
7. गाँधीवाद : समाजवाद, पृ.–23
8. पूर्वोक्त, पृ.–181–182
9. पूर्वोक्त, पृ.–50
10. नारायण सिंह, मार्क्स और गाँधी का साम्य दर्शन, प्रयाग, 1885 सं., पृ.–73–74
11. एम. आर. जम्बुनाथन् : 'द योग बॉडी', पृ.–3
12. किशोरलाल मशरूवाला, 'गाँधी–विचारदोहन', पृ.–15
13. गाँधीजी, 'हरिजन', 28.3.36
14. गोपीनाथ धावन, 'सर्वोदय–तत्त्व दर्शन', पृ.–61
15. हरिजन, 14.3.36
16. कि. घ. मशरूवाला, गाँधी–विचार दोहन, पृ.–16–17